





They.

'मास्टर' मणिमाला की १७७ थीं मणि ('वेदविभाग की २री मणि )

# यज्ञ-मीमांसा



श्री वेणीराम शर्मा गौड वेदाचार्य, काञ्यतीर्थ

प्रकाशक-

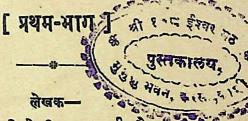
मास्टर खेलाड़ीलाल ऐगड सन्स, संस्कृत-चुक्रडियो, काशी।

पुनमुँद्रणादि सर्वाधिकार सुरक्षित ।

यहित्रिक्ष क आ यार्च इति बिलिनितार् यतस्य विषये श्रोतस्त्राणि परिक्षेत्र पुराण — वादमानि वाहलोग ग्रहितानि । नातस्त्रण प्राताणि कीम यज्ञमीमासा । नातिक १६-८००८ \* अो \*

E.

## I IBİRIR-TE



पण्डित श्री वेणीराम शर्मा गौड़,

वेदाचार्य, काञ्यतीर्थ

[ अध्यापक-गोयनका संस्कृत महाविद्यालय, काशी ]

### Yagya Mimansa

FIRST PART

by

#### Pt. SHRI VENI RAM SHARMA GAUD,

Vedacharya, Kavya-Tirth

Professor, Goenka Sanskrit College, Benares.

---



### समधीता

श्री गौड-ब्राह्मणकुलमूर्बन्य भारतप्रसिद्ध आयुर्वेदशास्त्रावतार सहदय-शिरोमणि रायवहादुर श्रीमान् पं० श्रीदत्त जी शास्त्री गौड (आनरेरी मजिस्ट्रेट एवं सव जज, भिवानी)

> [ RAIBAHADUR PANDIT SHRI DATTA JI GAUD Vaidyaraj, Hony. Magistrate & Sub—Judge, Bhiwani]

> > महोदय की सम्मान्य सेवा में
> >
> > श्रहा—मिक्क पुरस्तर
> >
> > पुष्पाञ्जलि रूप से
> >
> > सादर समर्पित—

रचिता यज्ञ-भीमांसा शेमत्करसरोरुहे। अर्प्यते परमप्रीत्या वेणीरामेण शर्मणा॥



यो यज्ञे यज्ञपरमैरिज्यते यज्ञसंज्ञितः। तं यज्ञपुरुवं विष्णुं नमामि प्रभुमीश्वरम्॥

सैसार का प्रत्येक प्राणी अपने सुखकी चिन्ता में निमम रहता हुआ उठते, वैठते, सोते, जागते हर समय उसी को सोच किया करता है। वह सुख दो प्रकार का होता है—ऐहलैकिक और पारलैकिक। इस शरीर द्वारा मोग्य सुख को ऐहलैकिक और दूसरे शरीर से परलोक में मोग्य सुख को पारलैकिक सुख कहते हैं। अधिकांश प्राणियों का झुकात ऐहलेकिक (सांसारिक) सुखों की ही ओर रहा करता है। अत एव उसके निमित्त वे लोग अनेक प्रकार के कष्ट मी सहन करते हैं तथा धन, पुत्र, कलतादि में हो अपने को परम सुखी और कृतकृत्य समझते हैं। फलतः अल्पसंख्यक ही-परलाक सुखार्थ प्रयत्वशील होते हैं, किन्तु यह समरण रखना चाहिये कि-अचिरत्थायी ऐहलेकिक सुखापेक्षया पारलैकिक सुख ही अन्तम और स्तुत्य है। उसकी प्राप्ति के लिये त्रिकालक महिण्यों ने समस्त वेदों, ब्राह्मणां एवं उपनिषदों के तत्वों की छान-बीन कर जी मार्ग निर्द्धारित किया है वह सर्वथा सत्रके लिये अवश्य अनुशरणीय है।

ऋषि-महर्षियों के सिद्धान्तों की उपलब्धि उनके शास्त्रों से होती है। अत एव शास्त्रों के शरण जाना ही परम श्रेयस्कर सिद्ध किया गया है! अन्यथा वृति

वाले के लिये तो गीता स्पष्ट कहती है--

यः शास्त्रिविमुत्सुज्य वर्तने कामकारतः। न स विद्यमवाप्नानि न सुखं न परां गातम्॥ तस्याच्छास्त्रं प्रमाणां ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। इतिवा शस्त्रवि । नाकं कर्म कर्तुामहाहो न ॥

(१६।२३-२४)

CC-0 Multiukshu Bhawan Varanasi Collection Digitized by eGangotri

200

तो सिद्धि मिलती है न सुख मिलता है और न उत्तम गति हो मिलती है। अतः हे अर्जुन ? कर्तव्याकर्तव्य के निर्णयार्थ शास्त्रों का प्रमाण मानना ही चाहिये। शास्त्रों में जो कुछ कहा गया है तदनुकूल की इस लोक में कर्म करना श्रेय-स्कर है।

कर्म-मीमांसा के प्रवृत्त होने पर मानव-देह धारण करते ही द्विज (ब्राह्मण,-क्षत्रिय, वैश्य, ) तीन प्रकार के ऋगों से ऋगी होता है। श्रुति में भी कहा है—

"जायमानो हि अन्नाह्मणस्त्रिभिऋ ग्रैर्स ज्वान् जायते, यज्ञेन देवे-

भ्यः, प्रजया पितृभ्यः, स्वाध्यायेन ऋषिभ्यः, इति ।"

'त्रैवर्णिक जन्मकाल से ही ऋग-त्रय (देव-ऋग, पितृ-ऋग, ऋषि-ऋग) से ऋगी वन कर रहता है। उन ऋगों की मुक्ति क्रमशः इस प्रकार होती है—यज्ञों के द्वारा देव-ऋग से, सन्तित के द्वारा पितृ-ऋग से तथा स्वाध्याय के द्वारा ऋषि-ऋग से होती है।'

मगवान् मनु ने भी 'ऋणानि त्रीएयपाक्तस्य' (६।३५) इत्यादि वाक्य द्वारा इसी ऋणत्रय के अपकरण को मनुष्य का प्रधान कर्म वतलाया है। ऋणत्रय में सर्वप्रथम देवसेवा की ही उपस्थिति होती है, देव-सेवा द्वारा देव-ऋण से मुक्त होना प्राथमिक कृत्य है। वह किस प्रकार सम्पन्न हो सकता है यह उपर्युक्त श्रुति ने वतला दिया है कि—यज्ञों के द्वारा ही देव-ऋणादि से मुक्ति हो सकती है। वह यज्ञादि कर्म अत्यन्त पावन तथा अनुपेश्चणीय है। जैसा कि अनेक मत—मतान्तरों का निरास करते हुए गीता के आचार्य स्वयं भगवान् ने सिद्धान्त किया है—

यज्ञ दःन-तपः कर्म न न्याज्यं कार्यमेव तत् ।
रज्ञा दःनं तपश्चेत्र गवना न मनीषिणाम् ॥ (१८।५)

इतना ही नहीं जगत् कल्याण की मीमांसा तथा कर्तव्य सत्पथ का निश्चय करते हुए स्पष्ट कहा है कि यज्ञिय कर्मों के अतिरिक्त समस्त कर्म छोक-बन्धन के छिये ही हैं—

आ कर्मणा इन्य व लो का इयं कमंबन्धनः '(गीता, ३१९) और भी प्रायः सभी शास्त्रकारों तथा विचारशील आचार्यों के मत से

क्ष'बाह्मण' यह पद दिजाति—मात्र का उपलक्षण है।

सिद्ध है कि यह ही सर्वस्व है और वही संसार का कल्याण कर्ता है यही वै विब्र्युः। (श॰ श्रा॰ शशशश )
नारायणः परो देवः। (मत्स्य पु॰ २४७।३६)
यहोऽयं सर्वकामधुक्। (पद्मपुराण)
यह्मभागभुजो देवाः। (मत्स्य पु॰ २४६।१४)
यहाः कल्याणहेतवः। (विष्णुपुराण, ६।१।८)
यहोश्च देवानामोति। (मत्स्य पु॰ १४३।३३)

उपर्युक्त विषय का यहाँ पर केवल सङ्केत-मात्र ही किया गया है। विशेष जिज्ञासुओं को 'यञ्च-मीमांसा' के पृष्ठ १० में 'यञ्च-महत्त्व' शीर्षक लेख पढ़ना चाहिये।

जिस प्रकार यह अत्यन्त महनीय पवित्र कर्म है उसी प्रकार उसके विधि-विधान भी अत्यन्त परिमार्जित एवं आदर्श हैं। जो लोग यहको साङ्गोपाङ्ग सम्पन्न करते हैं वे ही उत्तम याङ्गिक कहलाते हैं और वही लोग वास्तव में यह के अधिकारी कहे गये हैं। जो लोग शास्त्रविकद यह-कर्म करते हैं वे क्रमशः अधानकएटक तथा † मन्त्रकएटक कहलाते हुए यह-कार्य के लिये सर्वथा निषिद्ध कहे गये हैं। अतः श्रेष्ठ याहिक वनने के लिये वेदों के ‡ मन्त्र स्वर, वर्ण, त्रृष्टि, छुन्द, देवता, विनियोग निरुक्त, ब्राह्मण आदि का पूर्ण परिज्ञान करते हुए शिष्टाचार, धर्ममर्थादा, शास्त्रविश्वास, लोक-कल्याण-भावना, सन्ध्योपासना, ब्रह्मचर्य-एशा गुरुश्रद्धा, लोक प्रियता आदि सद्गुणों से सम्पन्न होना चाहिये।

स वास्त्रज्ञो यदमानं हिनरित यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥

(पार्या० शि०, ४२)

मन्त्राणां दैवतं छन्दो निरुक्तं ब्राह्मणान् ऋषीन् ।
 कृतिद्वतादींखाज्ञात्वा यजन्ते यागकण्टकाः ॥
 (कात्या० सर्वा० अनन्त भा०)

<sup>†</sup> ऋषिच्छन्दो दैवतानि ब्राह्मणार्थं स्वरानिष । श्रविदित्वा प्रयुञ्जानो सन्त्रकण्टक उच्यते ॥ (ऋ ॰ सा० ११११३) ‡ मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।

ऐ सा गुणो से रहित वैदिकनामधारी केवल मन्त्रादि के किसी एक भाग तथा कितपय भागों का अधिकारी शास्त्रानुसार ज्ञानापूर्ण होने के कारण याजनादि कर्मों का अधिकारी कथमि नहीं हो सकता है।

यजमान के लिये भी कहा गया है कि श्रद्धा-मिक्त-सत्य-ब्रह्मचर्यादि व्रत के नियमानुकूल आचार सम्पन्न ही यज्ञाधिकारी होता है। अन्यथा श्रद्धादि गुण-हीन यजमान का किया हुआ यज्ञ-कर्म सर्वथा निष्कल होता है और देव-गण भी उसकी दी हुई 'आहुति' को स्वीकार नहीं करते ऐसा स्पष्ट कहा है—

"नाश्रद्धानायः हविर्जुवन्ति देवाः।"

गीतोपनिषद् में भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि की है—

अथद्धया हुतं द्रव्यं तपस्तम्नं कृतं च यत्।

असिहित्युच्यते पार्थं न च तत्प्रेत्य नो इह॥

'अश्रद्धा से हवन, दान, तप अथवा जो कुछ कर्म किया जाता है उसे 'असत्' कहते हैं। हे पार्थ ? असत्कर्म का फल न तो परलोक में और न इस लोक में ही हितकर होता है।

श्रद्धाहीन सम्पादित यज्ञ नास्तिकतापूर्ण कहे जाते हैं और इस प्रकार के निन्दनीय यज्ञों से राजा और राष्ट्र दोनों की भयक्कर क्षति होती है। जैसा कि नस्त्यपुराण में भी लिखा है—

शान्तिमङ्गलहोमेषु नास्तिक्यं यत्र जायते। राजा वा च्रियते तत्र स देशो वा विनश्यति॥

(२३९।११)

'शान्ति, मङ्गल, होम-कार्यों में जहाँ पर श्रद्धा-होनता से उत्पन्न नास्तिकता का साम्राज्य रहता है वहाँ के राजा तथा उस देश का विनाश होता है।'

अतः †श्रद्धा-पूर्वंक यागादि कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये। ऐसा करने से ही मनुष्य मोक्ष का अधिकारी होता है। मनुस्मृति में स्पष्ट कहा है—

अधन 'षष्ठयर्थे चतुर्था । तथा च अश्रद्धानस्येति फबति । †श्रद्धा तु चतुर्विषपुरुवार्थेषु यथार्था 'एवमिदम्' इति समुत्पद्यमाना या धोस्त-दिषदेवतामाव संदेव । श्रद्धरेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः। श्रद्धाकृते ह्यच्चये ते भवतः स्वागतैर्धनैः॥ (४।२२६)

वेदों में भी अद्धा की ही प्रधानता स्वीकार करते हुए कहा गया है कि—

ऋग्वेद (८।८।९।) में भी अद्धा के महत्त्व का वर्णन इस प्रकार मिळता है—

### श्रद्धयाऽग्निः समिध्यते श्रद्धया ह्यते हविः। श्रद्धां भगस्य मुर्धनि वचसा वेदयामसि॥

जब तक इस भारत-भूमि में यज्ञों का उचित सम्मान था तब तक इसकी मर्यादा तथा मुख सराहनीय था। प्राणी-प्राणी में सद्भावना थी, चारों और कल्याण ही कल्याण हिष्मोचर होता था। जब से नवयुग ने अपनी महिमा के प्रचुर प्रसार का आरम्भ किया तमी से यज्ञादि कर्म में शिथिलता आने लगी। जिसका परिणाम यह हुआ कि—सुख के बदले दुःख, मर्यादा के बदले अकीर्ति, पारस्परिक प्रेम के बदले ईप्या तथा होष, द्रव्य के बदले दिखता का नम्र नृत्य एवं नाना प्रकार के अकल्याण ही हिष्ट- पथ हो रहे हैं। राजा, रङ्क, फकीर सभी मुख—लेश की आकाङ्क्षामात्र में ही सफल होते दिखाई दे रहे हैं। अतः सुस्पष्ट है कि—उपर्युक्त दुःख-राशि एवं संसार के समस्त दुःख-समूह को आमूलच्ल नष्ट-भ्रष्ट करने वाला केवल यज्ञ ही एक ऐसा अकाट्य साधन है जिसके द्वारा मनुष्य ,सर्वतीभावेन सुखी हो सकता है।

पहले किसी समय इसी पुण्य मारत-भूमि पर सभी त्रैवर्णिक श्रद्धाभक्ति पूर्वक अनेक यहां का अनुष्ठान करते थे। उस समय कोई भी द्विज ऐसा नहीं या जो वेदों का अध्ययन न करता हो अथवा अग्न्याधान (अग्निहोत्र) न करता हो। इस समय सैंकड़ों हजारों में कोई अग्निहोत्री नहीं दिखलाई देता। सैंकड़ों में कोई सोमपान करनेवाला नहीं दिखलाई देता, एक भी यथावत् वेदाध्ययन करने वाला श्रोत्रिय नहीं दिखलाई देता।

वर्तमान कराल-कलिकालके इस भयङ्कर प्रमाव से अत्यल्प संख्यामें याशिक देखने में आते हैं। आज तो वेद के एक अक्षर को भी न जानकर अपने को समस्त वेदाध्ययन-शील वतर्लाने वाले अधिक मिलते हैं। दर्श-पूर्णमास की भी प्रक्रिया न जानने वाले अपने को अश्वमेध-याजी कहने का भी दुस्पाइस करते<sup>:</sup> पाए जाते हैं।

अस्तु, अव मेरी भूतभावन मगवान् विश्वनाथ के चरणों में प्रार्थना है कि यह देश पुनः अपनी प्राचीन उन्नति के लिए अप्रसर हो, घर घर में त्रेताग्नियाँ प्रज्वलित हों, सबलोग पुनः अपने मुख्य धर्म यज्ञादि पर आरूढ़ हों, देवता लोग तृप्त हों, प्रसन्न देवता लोग यज्ञमानों को अभीष्ट फल प्रदान करें, भारतीय आर्य-जाति में परस्पर प्रेम की अधिकता हो तथा यह भूमण्डल-मूर्द्धन्य पवित्र भारत-भूमि एवं आर्य जाति पुनः "सत्यमेव जयते नामृतम्" के अवलम्ब से विश्व-विजयी वने।

### वेद और कर्मकाण्ड-शिक्षा की आवश्यकता-

एक दिन वह था जब कि ब्राह्मणों के प्रत्येक घर में वेदों के स्वाध्याय की पिवत्र ध्विन कानों में गूँजा करती थी परन्तु आज कुटिल कालचक के प्रभाव से वेदों की ध्विन होनी तो दूर रही, प्रत्युत ढूँढने से भी ब्राह्मणों के घरों में वेद—स्वाध्यायी वालक नहीं मिलते । आधुनिक ब्राह्मण—गण अपने—अपने सन्तानों को वैदिक—शिक्षा के स्थान में अंग्रेजी आदि शिक्षाओं से शिक्षित करने लगा गये। यही कारण है कि—दिनानुदिन वेद-वेदाङ्क का हास प्रत्यक्ष दृष्टि-प्या पर आ रहा है।

एक दिन वह था जब कि घर-घर में वैदिक विद्वान् सुसाध्य थे, पर आकः हमारे सामने वह समय भी प्रस्तुत है कि अन्वेषण करने पर भी १०-५ वेदजः (वेद—वेदाङ्ग ज्ञाता) नहीं मिळते और तो और काशी जैसे विद्याकेन्द्रों में भी इस बात का पूर्णतः अभाव दिखाई देने छगा है। विशेष विचारणीय विषयः तो यह है कि—आज काशी में भी वेद का जो कुछ प्रसार—प्रचार है वह केवल शुक्क यखुवेंद का ही है। अन्य ऋग्वेदादि के वास्तविक ज्ञान रखने वाले तो इने गिने विद्वान् ही नज़र आते हैं। जो छोग इन तीन वेदों के ज्ञाता है उनमें विशेषतया दाक्षणात्य विद्वान् ही अधिक संख्या में पाये जाते हैं। पञ्चगौड़ों में तो इसका सर्वथा अभाव सा ही होने जा रहा है। पञ्चगौड़ों को शुक्क यखुवेंदातिरिक्त अन्य वेदों के अध्ययनाध्यापनादि की सुव्यवस्था नहीं है, यदि कहीं पर है भी तो वह केवल शुक्क यखुवेंद मात्र की ही है।

इस अमाव की पूर्ति के लिये काशी के सुप्रसिद्ध शास्त्रानुरागी दानवीर सेठ श्री गौरीशङ्कर जी गोयनका महोदय ने मेरे स्वर्गाय पिताजी (महामहोपाध्याय पं० श्री विद्याधर जी गौड) की विशेष प्रेरणा से अपने काशीस्थ जो० म० गोयनका संस्कृत महाविद्यालय में चारों वेदों के भिन्न भिन्न वेदाध्यापकों की नियुक्ति की है। इस प्रशंसनीय आयोजन को हुए भी आज प्राय: १०-११ वर्ष हो रहे हैं, किन्तु इस सुव्यवस्था से जितना लाम आज भी पञ्चद्राविड अध्ययन-शीलों को हो रहा है उतना पञ्चगौड़ों को नहीं हो रहा है, यह निश्चित है।

इसी प्रकार की चिन्तनीय अवस्था कर्मकाण्ड-शिक्षा के सम्बन्ध में भी है। कर्मकाण्ड की तो आज यहाँ तक नौवत आ पहुँची है कि-वह बहे विद्या-केन्द्रों में खोजने पर भी कर्मकाण्ड निपुण विद्वान् प्राप्त नहीं होते। इसका मुख्य कारण है कर्मकाण्ड-शिक्षा का पूर्णतया अभाव। कुछ समय की ही वात है कि कर्मकाण्ड- कुशल विद्वान् अपने अपने शिष्यों को कर्मकाण्ड की शिक्षा दिया करते थे तथा शिष्यगण भी परिश्रम पूर्वक कर्मकाण्ड में कुशल होने के लिये अनवरत रात्रि-निद्वा परिश्रम किया करते थे। किन्तु आज न तो कोई छात्र कर्मकाण्ड सीखना चाहता है और न गुरुजन हो सिखाने के लिये प्रयत्नशील होते हैं।

विशेषतः आज के परीक्षा-युग ने तो और भी छात्रों का जीवन खतरे में डाछ दिया। जिस वेद का यह कर्मकाण्ड 'प्राण' समझा जाता है उस कर्म-काण्ड-शिक्षा को यह हाछत है कि काशीस्थ गवर्नमेन्ट संस्कृत काछेज की वेद की परीक्षा में वेद-प्रथमा से छेकर वेद की आचार्य परीक्षा पर्यन्त उस विषय का एक भी प्रन्थ ऐसा नहीं रक्खा गया है जिससे कर्मकाण्ड के शिक्षण में सहायता मिछ सके। इस प्रकार की सर्वतोमुखी कर्मकाण्ड परीक्षा के अभाव को देखते हुए ऐसा कौन सहृदय होगा जिसे कुछ काछ के छिए पश्चात्ताप भी न हो। इस विषय में यदि परीक्षाओं के अधिकारी मण्डछ विशेष दत्तचित्त होकर ध्यान देते हुए कम से कम वेद की ही परीक्षाओं में कर्मकाण्डोपयोगी सुन्दर-सुन्दर प्रन्थों का समावेश कर दें तो अवश्यमेव कर्मकाण्ड-शिक्षाथियों का प्रचुर छाम हो सकता है, अन्यथा रही सही अवशिष्ठ श्वास-प्रश्वासक्त्री कर्मकाण्ड-शिक्षा और मी बिछीन हो जायगी। इसका दुष्परिणाम यह होगा कि ब्राह्मण-बन्धु-गण यज्ञ यागादि के नाम निशान तक को भूछ जाँयगे और अपनी प्राचीन मर्यादा को रसातछ में पहुँचाते हुए

संसार के समक्ष मूर्खपदाबलम्बी होते हुए उसी नाम को विशेष चरितार्थ करेंगे। आज का यज्ञ

गीता जैसे विश्वविश्रुत प्रन्थ में क्ष्मात्त्विक यज्ञ का विशेष महत्त्व बतलायाः गया हैं। इसी लिये प्राचीन काल के ऋषि-महर्षि लोककल्याणार्थ सात्त्विक यज्ञ ही किया करते थे। निष्काम भाव से किये गये सात्त्विक यज्ञ का जो फल होना चाहिये वह फल प्रत्यक्षरूप में भारत-वासी अनुभव करते थे। परन्तु खेद है आज उस परम पुनीत 'सात्त्विक यज्ञ' के बदले †राजसिक तथा ‡तामसिक यज्ञ का व्यवहार होने लगा है।

सास्विक यज्ञ का महान् फल है और इससे समस्त लोक का कल्याण होता .है ऐसी स्थिति में भी इस यज्ञ से विमुख होने का एक मात्र कारण है अपनी -स्वतन्त्ररूप से स्वार्थिसिद्ध करना । इधर वर्षों से जो यज्ञादि अनुष्ठान हो रहे हैं उनमें स्वार्थिसिद का ही रोग लगा हुआ प्रत्यक्ष दृष्टि में दिलाई दे रहा है। कोई द्रव्य प्राप्ति के लिये, कोई सन्तान प्राप्ति के लिये, कोई स्कूल पाठशाला के . लिये, कोई मट-मन्दिर के लिये, कोई अपनी कीर्ति विख्यात करने के लिये, इत्यादि विविध रूपों में स्वार्थ सिद्धि की आड़ में यज्ञ रूपी नाटक की रचना कर अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश की पूर्ति करते हैं । इस उद्देश की पूर्ति में सबसे अधिक -सहयोग हमारी भोर्छा-भार्छी विद्वन्मण्डली का रहता है। यह सरस्वती के सच्चे पुजारी अपनी मान मर्यादा को तिलाञ्जलि देकर स्वल्प द्रव्य के लोम से कई मास पूर्व ही यज्ञाध्यक्षों के निवास स्थान की प्रदक्षिणा करते फिरते हैं। 'सेवा-धर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः' के अनुसार सेवा-धर्म के प्रभाव के कारण जिन लोगों के नाम कृपा-लिष्ट में दर्ज हो जाते हैं वे लोग अपना और अपने पूर्व-पुरुषों का वड़ा हो सौभाग्य समझते हैं। यज्ञादि कर्म समाप्त हो जाने पर यजमान याज्ञिक विद्वानों को थोड़ा बहुत द्रव्यादि देकर चाहे वह सन्तुष्ट हो या असन्तुष्ट उन्हें हठात् यज्ञ-मण्डप से विदाई कर यज्ञीय समस्त धन स्वयं हजम कर बाते हैं और उस ब्राह्मणांश द्रव्य द्वारा स्वयं लाभ उठाते हुए अपनी स्वार्थ सिद्धि पूर्ण करते हैं। इस प्रकार के अविहित तामसिक यज्ञ और तामसिक वृत्ति वाले यज्ञ-कर्ताओं से विद्वानों को सर्वदा सतर्क रहना चाहिये।

<sup>\*</sup> गीता १७।११, 🕇 गीता १७:१२, 📫 गीता १७।१३।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

#### यझ-विषय में नास्तिकों के अनर्गल आद्येप का समाधान

मत्स्यपुराण (९३।१११) आदि में 'नास्ति यक्समो रिपुः' का जो उल्लेख किया गया है, इसको लेकर यदा कदा कुछ % नास्तिक वर्ग यज्ञ पर अनेक रूप से आक्षेप किया करते हैं। किन्तु उन्हें यह भी समझना चाहिये कि उपर्युक्त वाक्य का प्रयोग किसके लिये और क्यों किया गया है ? मत्स्यपुराणादि में जहाँ पर दक्षिणा आदि के रहित यज्ञ की निन्दा की गई है वहीं पर 'नास्ति यञ्चसमो रिपुः' का उल्लेख कर सूचित किया है कि—'यज्ञ-कर्म अत्यन्त श्रेष्ठ है, इस श्रेष्ठ कर्म में जो यजमान शास्त्र-विधि के अनुकूल दक्षिणा आदि द्वारा आचार्याद ऋत्विजों का पूर्ण सम्मान करते हैं उनके लिये यह यज्ञ सर्वप्रकार से सुखप्रद होता है और जो लोग शास्त्रविधि के विपरीत आचरण करते हैं अर्थात् दक्षिणा आदि में गड़बड़ी करते हैं उनके लिये वही श्रेष्ठकर्म (यज्ञा) शत्र-रूप में परिवर्तित होकर उनका नाश कर देता है। अतः निष्कर्ष यह है कि विधिहीन यज्ञकर्ता के लिये ही नास्ति यज्ञसमो रिपुः' इस वाक्य का कुप्रयोग किया गंया है न कि समस्त संसार के लिये।

### शतमुख कोटिहोम श्रीर श्रीकरपात्री जी

शास्त्रों को अवलोकन परम्परा से यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि—विश्व-कल्याण की सुख-शान्ति के लिये 'कोटिहोम' से बढ़कर कोई प्रयोग नहीं है। किन्तु इस प्रयोग को सम्पन्न करने के लिये कोटिहोम की प्राणाणिक पद्धित और प्रामाणिक ठोस विद्वान्—जो कि साङ्गोपाङ्ग वेद तथा शास्त्र का पूर्ण ज्ञाता एवं धर्मशास्त्रव्यवस्थापक हो—का होना परमावश्यक है। अन्यथा कर्म में अवैधता हो जाने का विशेष डर रहता है। अवैधरूप से किया हुआ कर्म विश्व में शान्ति की जगह अशान्ति की वृद्धि करता है, यह निश्चित है।

इतिहासों के अवलोकन से अवगत होता है कि—कोटिहोम का प्रचार प्राचीन समय में अत्यधिक था किन्तु इधर सैकड़ों वर्षों से कोटिहोम का विलक्कुल अभाव सा हो गया था। फल-स्वरूप परिणाम यह हुआ कि शनै: शनै: उस महनीय महायज्ञ के स्वरूप से पठितापठित सभी लोग अपरिचित होने लगे। कितपय व्यक्ति-विशेष जो इस यज्ञ के स्वरूपादि से परिचित भी थे वह भी इस महायज्ञ

<sup>\* &#</sup>x27;नास्तिको वेद-निन्दकः'

के विस्तृत विधि-विधान के स्मरण-मात्र से ही अपने-आप को सवैथा शक्ति-हीन समझ कर जुप साध छेते थे। इस प्रकार की संसार की धार्मिक असमर्थता और उपेक्षा के कारण कोटिहोमादिका ही नहीं, अपि तु छोटे-छोटे अन्य यज्ञ-यागादि के मीं नाम-निशान तक मिटने छने। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ—यज्ञादि धार्मिक कृत्यों के न होने से संसार के समस्त प्राणी अनेक प्रकार की दुःखराशि में मम होने छने। संसार की भीषण परिस्थिति से जब कर विश्वकल्याणार्थ मारतप्रसिद्ध त्याग-तपोमूर्ति दण्डीस्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज ने धर्म-प्रवार के कठिन वत को धारण करते हुए भारत के प्रधान-प्रधान केन्द्रों में भ्रमण कर धर्म में जो अछौकिक जाग्रति का नया जीवन-सञ्जार उत्पन्न किया.है वह किसी मी सनातनधर्मावछम्बी से तिरोहित नहीं है। आप के सत्य सङ्कल्प का ही महान् प्रमाव है कि—आज समस्त देशों और प्रान्तों के कोने-कोने में धर्म का पूर्ण प्रचार हो रहा है तथा समस्त देशवासी धर्म के कट्टर अनुयायी बनते जा रहे हैं। साथ ही समस्त धार्मिक जनता अगणित संख्या में एकत्रित होकर श्रद्धा-मिक्त से अनेक तरह के जप, तप, पूजा,पाठ, यज्ञानुष्ठादि सत्कायों को करते हुए अपना और देश का कल्याण कर रहे हैं।

त्यागमूर्ति श्रीकरपात्री जी के सत्यसङ्कल्प के चमत्कार का ही फल था कि युद्धजन्य भीषण महिंगी के युग में भी भारत की विख्यात राजधानी देहली और ज्यापार के मध्य केन्द्र कानपुर में निर्विन्न कोटिहोम यहायज्ञ सम्पन्न हुए।

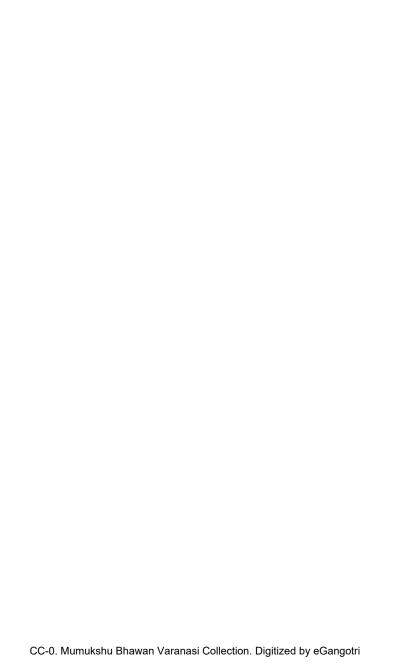
देहली तथा कानपुर के महायज्ञ सिविधि सम्पन्न हुए या नहीं ? इस राग-द्रेषा-त्मक झगड़े में न पड़ते हुए इतना अवश्य वक्तव्य है कि—उपर्युक्त दोनों महायज्ञों में कानपुर की अपेक्षा देहली का महायज्ञ अधिक सफल वन सका। देहली के यज्ञ को साङ्गोपाङ्ग सम्पन्न करने के लिये संसार के मुख्य मुख्य अनेक धर्मप्रेमों सेठ-साहूकारों का तन, मन, घन से पूर्ण सहयोग प्राप्त था। किन्तु उस यज्ञ का सब से अधिक श्रेय अनेक धर्म-संस्थाओं के संस्थापक काशीनिवासी सप्रसिद्ध









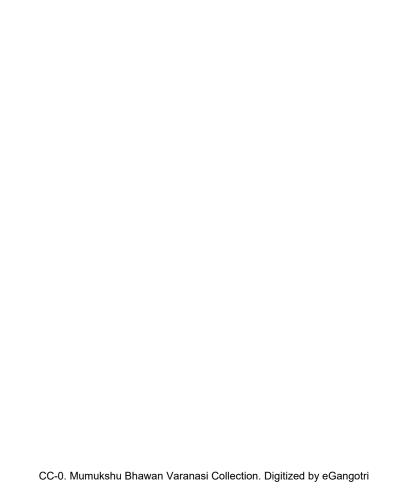










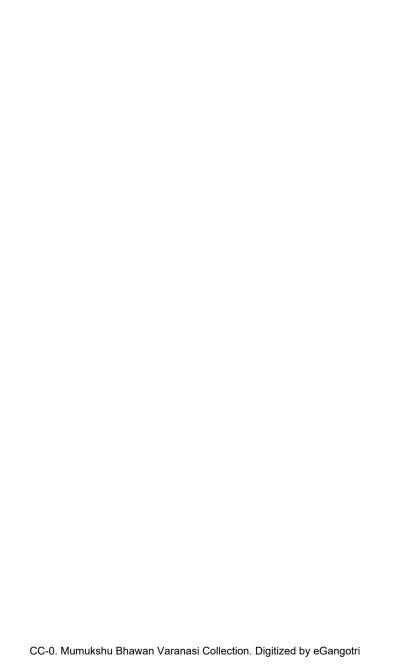






































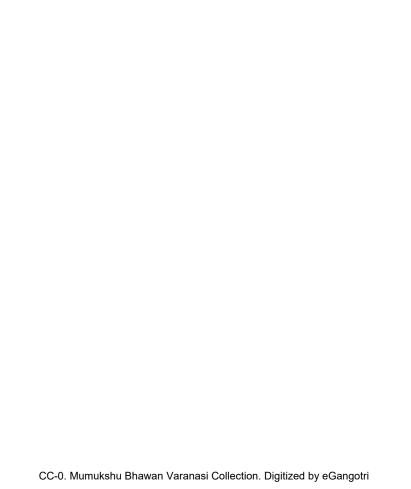








































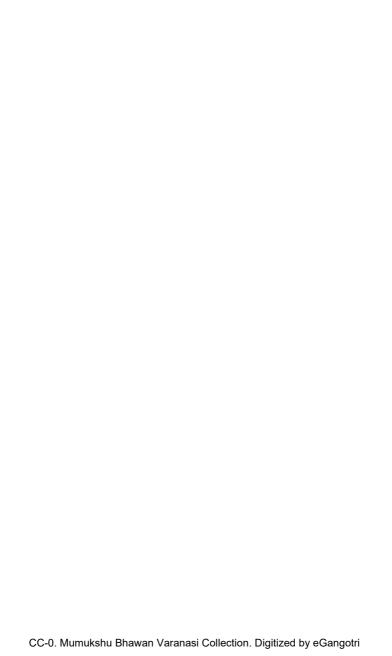


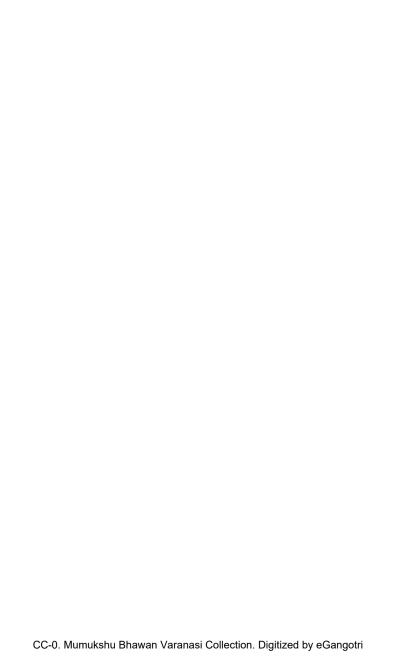
























### होम के समय बोलना नहीं चाहिये

होम के समय में होम-क्रिया के अतिरिक्त राज्यों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। जैसा कि बृद्ध मनु ने लिखा है—

स्नातश्च वरुणस्तेजो जुह्नतोऽनिः श्रियं हरेत्।

भुञ्जानस्य यमस्त्वायुः तस्मान्न व्याहरेत् त्रिषु ॥

'स्नान करते समय बोलने बाले के तेज को बहुण हरण कर लेते हैं, हबन करते समय बोलने बाले की श्री को अग्निदेव हरण करते हैं तथा मोजन करते समय बोलने बाले की आयुको यम-देव हरण कर लेते हैं, अतः उक्त तीनों कर्मों में ननुष्य को बोलना नहीं चाहिये।'

हवन से वृष्टि ग्रादि को उत्पत्ति अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्ञायते वृष्टिर्वृष्टेरतं ततः प्रजाः ॥

( मनुस्मृति, ३।७६ )

'अग्नि में विधि-विधान पूर्वक डाली हुई आहुति सूर्य-देव को प्राप्त होती है, पश्चात् उससे बृष्टि, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजा की उत्पत्ति होती है।'

गीता (३।१४) में भी लिखा है—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः। यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥

'समस्त प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं और अन्न की उत्पत्ति दृष्टि से होती है और दृष्टि यज्ञ से होती है और वह यज्ञ कर्म से होता है।'

### हवन का प्रकार

उत्तानेन तु हस्तेन अङ्गुष्ठाग्रेण पीहितम् । संहताङ्गुडिपाणिस्तु वाग्यतो जुहुयाद्धविः ॥

'सीधे हाथ से एवं अङ्गुष्ठाप्र से दवाये हुए हवि को परस्पर में मिली हुई अङ्गुली-युक्त हाथ से मौन होकर हवन करे।'

श्राहुति किसे कहते हैं ?

देवताओं के उद्देश से एकवार हविर्द्रव्य का जितना अंश देवताओं के प्रति \*'स्वाहा' कह कर समर्पण किया जाता है उसे 'आहुति' कहते हैं।

कहा भी है-

'देवोद्देशेन बह्रौ मन्त्रेण हिवः प्रक्षेप आहुतिः।' (का० २।१।२०)

तथा च-

'स्वाह्यकारेण संस्कृतं हविः स्वाह्यकृतम्।' (वा० सं० २६।३७, तैति० १०।१९।११)

ऐतरेय ब्राह्मण में भी कहा गया है-

'ह्वयति देवाननया सा आहृतिः। जुहोति प्रक्षिपति हविरनया इति वा। \* आहृतयो नामैता यदाहुतयः, एताभिर्देवान् यजमानोः ह्वयति तदाहृतीनामाऽऽहृतित्वम्।' (१।१।२)

'जिससे देवताओं को बुलाया जाय उसे 'आहुति' कहते हैं। तथा जिससे हविद्रैंक्य का अग्नि में प्रक्षेप किया जाय उसे 'आहुति' कहते हैं। आहुति को आहुतित्व इसिंग्ये है कि इनके द्वारा यजमान देवताओं को बुलाता है।'

> प्राहुति का काल मन्त्रेणोङ्कारपूतेन स्वाहान्तेन विचक्षणः । स्वाहावसाने जुहुयाद् ध्यायन् वै मन्त्रदेवताम् ॥

> > (देवयाज्ञिक)

'ॐकार से पवित्र तथा स्वाहान्त मन्त्र से स्वाहा के अवसान में मन्त्र देवता का ध्यान करता हुआ विद्वान् आहुति दे।'

\* देवतो हेस्यपूर्वकत्यागवाचक 'स्वाहा' शब्दप्रयोगेण विषयीकृतत्वं स्वाहा' कृतत्वम् ।

\* खोक में 'श्राहुति' शब्द ही प्रचलित है, ब्रतः उसके साधनार्थ आङ्प्रंकः 'हु दानादनयोः' इस घातु से 'किन्' प्रत्यय करना चाहिये।

'बाहति' राज्य में तो आह पूर्वक 'हे म' धातु से 'जिन' प्रत्यय होता है। CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri इसकी पुष्टि विष्णुधमें में भी मिळती है—

मन्त्रेणोङ्कारपूतेन स्वाहान्तेन विचक्षणः । स्वाहावसाने जुहुयाद् ध्यायन्वे मन्त्रदेवताम् ।। कर्म-कौमुदी में 'आहुति' का काल निम्न प्रकार से कहा गया है— स्वाहावसाने जुहुयात् स्वाहया सह वा हविः । त्यागान्ते ब्रुवते केचिद् द्रव्यप्रश्लेपणं बुधाः ॥

'होता स्वाहा के अन्त में हवन करे अथवा स्वाहा के साथ करे। कुछ विद्वानों का मत है कि हविर्द्रव्य का अग्नि में प्रक्षेप कर ही 'स्वाहा' शब्द कहना चाहिये।'

उपर्युक्त कथन की पुष्टि परग्रुराम कारिका में भी की गई है— स्वाहान्ते जुहुयात् होता स्वाहया सह वा हिनः । त्यागान्ते ब्रुवते केचित् द्रव्यप्रक्षेपणं बुधाः ॥

कुछ आचार्यों का 'स्वेच्छ्या जुहुयाद्वितः' यह मी मत है, किन्तु हम इस मत से सहमत नहीं है। स्वेच्छाचार से तो भयङ्कर अनवस्था दोष हो जायगा। अतः उपर्श्वक्त देवयाहिक एवं विष्णुधर्म, कर्मकौमुदी, परशुरामकारिका आदि के ही मत मान्य और अनुकरणीय हैं।

ह्वनीय द्रव्य (शाकल्य) श्रीर उसका परिमाण 'ब्रीहीन् यवान्वा हविषि' (का० श्रौ०) तथा 'होमं समारमेत् सिपंयवब्रीहितिलादिना' (अनुष्ठानप्रकाश) इत्यादि श्रुति-स्मृति प्रमाणों से तिल, यव, चावल और घृत की हो हविंद्रव्य संज्ञा सिद्ध होती है। हवनादि में विशेषतथा उपर्युक्त हविंद्रव्य का हो अधिक उपयोग होता है।

हवनार्थं हवनीय द्रव्य की आहुति देने के विषय में शास्त्रशों ने एक नियमित व्यवस्था कर दी है। अतः याज्ञिकों को उचित है कि जिस द्रव्य के विषय में जो परिमाण वतलाया गया हो तदनुकूल द्रव्य-योजना कर हविर्द्रव्य का व्यवहार करना चाहिये। शास्त्रानुमोदित मार्ग के अनुकूल कार्य करने से ही फल होता है अन्यथा लाम के बदले अनेक प्रकार की हानि मोगनी पड़ती है। हविर्द्रव्य के परिमाण का विवरण शास्त्रों में इस प्रकार मिलता है—

√तिलास्तु द्विगुणाः प्रोक्ताः यवेभ्यश्चेव सर्वदा । अन्ये सौगन्धिकाः स्निग्धा गुग्गुलादि यवैः समाः॥

'यव की अपेक्षा तिल को द्विगुणित रखना चाहिये और अन्य सुगन्धित गुग्गुल इत्यादि⁄द्रव्यों को यव के बराबर ही रखना चाहिये।'

> आयुः क्षयं यवाधिक्यं यवसाम्यं धनक्षयम् । सर्वकामसमृद्ध्यर्थं तिलाधिक्यं सदैव हि ॥ (त्रिकारिकायाम्)

'यव के अधिक होने पर आयुका नाश होता है, यव के बराबर तिल रहने पर धन का नाश होता है अतः सर्वदा तिल की अधिकता पर ध्यान रखना चाहिये। इससे सम्पूर्ण कायों की सिद्धि होती है।'

अन्यत्र छिखा है-

पश्चभागास्तिलाः प्रोक्तास्त्रिभागो यव एव च । द्रौ भागौ तण्डुलस्योक्तौ भागैकं गुग्गुलादिकम् ॥ रुद्धभागैः कृते होमे जायते सिद्धिरुत्तमा ॥

'पाँच हिस्सा तिल, तीन हिस्सा यव, दो हिस्सा चावल और एक हिस्से में गुग्गुल इत्यादि सुगन्धित द्रव्य इस प्रकार एकादश भागों से संयुक्त आहुति से सर्वप्रकार की उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है।'

पुनश्च— ं तदर्ईं तु यवाः पोक्ताः तदर्ईं तण्डु**ळाः** स्मृताः ।

तदर्द शर्करा प्रोक्ता आज्यभागचतुष्टयम् ॥ 'तिल का आधा यव, यव का आधा चावल, चावल की आधी ची<sup>नी</sup> और चतुर्गुण घृत से शाकल्य का निर्माण उत्तम कहा गया है।'

तथा वेदभागास्तिलानां स्युः भागोनास्तु यवाः स्मृताः । द्विभागं च घृतं प्रोक्तं भागमेकं च तण्डुलाः ॥

'चार भाग तिल, तीन भाग यव, दो भाग घृत और एक भाग चावल का शाकल्य उत्तम होता है।'

'तिलाः कृष्णा घृताभ्यक्ताः किञ्चिद्यवसमन्विताः।'

( शान्तिरत )

किञ्च--

'तिलाधिक्ये भवेल्रक्ष्मीयंवाधिक्ये दरिद्रता।'

'तिल की अधिकता से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और यन की अधिकता से दिखता की प्राप्ति होती है।'

इस प्रकार उपर्युक्त मत-मतान्तरों की आलोचना से 'बहुवचनं प्रमाग्रम्' (अनेक वचन जिस विषय को कहें वही प्रमाणभूत है) इस न्याय से यही निष्कर्ष निकलता है कि तिलकी अधिकता से ही यजमान को सर्वविध सिद्धियाँ होती हैं।

कहीं कहीं ग्रन्थ विशेष में 'यवार्द्ध तण्डुलाः प्रोक्ताः तण्डुलार्द्ध तथा तिलाः' यह वचन भी मिलता है। यद्यपि यह वचन यवाधिक्य का ही विधान सिद्धं करता है किन्तु सहायक प्रामाणिक वचनान्तरों की न्यूनता के कारण यवाधिक्य ही सर्वथा उपेक्षणीय और त्याज्य है।

नित्य कर्म में विहित हवनीय द्रव्य के अभाव में प्रतिनिधि द्रव्य नित्य हवन-कर्म में विहित द्रव्य के अभाव में प्रतिनिधि द्रव्य से भी कार्य हो सकता है। जैसा कि महर्षि कात्यायन ने भी कहा है—

√'नित्ये सामान्यतः प्रतिनिधिः स्यात् ।'

(का श्री शशर)

अन्यत्र भी ऋहा है-

घृतार्थे गोघृतं प्राद्यं तदमावे तु माहिषम् । आजं वा तदभावे तु साक्षात्तैलमपीष्यते ॥ तैलाभावे प्रहीतव्यं तैलं जर्तिलसम्भवम् । तदभावेऽतसीस्नेहः कौसुस्मः सर्षपोद्भवः॥ वृक्षस्तेहोऽथवा प्राद्यः पूर्वास्त्रामे परः परः । तद्मावे यवन्नीहिस्यामाकान्यतमोद्भवः॥

( मण्डनः )

'हवन के लिये सब से अच्छा गो घृत होता है, उसके अमाव में भैंस का घृत, उसके अमाव में बकरी का घृत, उसके अमाव में ग्रुद्ध तेल, तेल के अमाव में जितेल का तेल, उसके अमाव में तीसी का तेल, उसके अमाव में कौ सुम्म अथवा सरसों का तेल, उसके अमाव में गोंद से, उसके अमाव में बब, ज्वाबल, सांवा इन तीनों में से किसी एक के तेल से काम चलावे।'

बौधायन का भी यही मत है-

आज्यहोमेषु सर्वेषु गग्यमेव भवेद् घृतम् । तद्स्रामे तु माहिष्यं आजमाविकमेव वा ॥ तद्मावे तु तैसं स्यात्तिस्रामावे तु जातिस्म् । तद्मावे तु कौसुम्मं तद्मावे तु सार्षपम् ॥

विष्णुधर्मीत्तर में भी कहा है--

दघ्यकामे पयः कार्यं मध्वलामे तथा गुडः । घृतप्रतिनिधिं कुर्यात पयो वा दिधि वा नृप ॥

'द्धि के अमान में दुग्ध से, शहद के अमान में गुड़ से, घृत के अमान में दुग्ध अथवा द्धि से काम चलावे।'

> प्रज्वां तत श्रांग्न में हा हवन करना चाहिये योऽनर्चिषि जुहोत्यमौ व्यङ्गारिणि च मानवः। मन्दामिरामयाची च दरिद्रश्चापि जायते॥ तस्मात्सिमद्धे होतव्यं नासिमद्धे कथश्चन॥

( छन्दोगपरिशिष्ट )

'नो मनुष्य तेन-हीन अग्नि तथा अङ्गारहीन अग्नि में आहुति देता है वह मन्दाग्नि, आमय इत्यादि रोगों से दुःखी तथा दिखता को प्राप्त होता है। अतः प्रज्वित अग्नि में हो हवन करना सवैथा उचित है।'

# क मन्त्र का उचारग् प्रकार वर्णः स्पष्टतरः कार्यो नासाश्चासावधीति वा । मुखश्चासावधि शृण्वत्रमिषेकार्चनादिषु ।।

-( वृहद्याज्ञवल्क्य ) .

'अभिषेक, अर्चन, पूजन, हवन, जप आदि में वर्ण को नासिका के श्वास के इकने तक वर्ण स्पष्ट उच्चारण करें और मुख से श्वास छेने तक मन्त्र अवण करता हुआ वर्ण का स्पष्ट उच्चारण करें।'

गङ्गा त्रादि नदी के किनारे कुण्ड-मण्डप निर्माणार्थ दिक्साधन अनावश्यक है

यज्ञादि अनुष्ठान को साङ्गोपाङ्ग सफलीभूत बनाने के लिए सर्वप्रथम

 मन्त्राध्वतुर्विधाः—करणमन्त्रः, कियमाणानुवादिमन्त्रः, अनुमन्त्रण-मन्त्रः, जपमन्त्रद्वेति ।

१ — कर्ण्यान्त्रः — यस्य मन्त्रस्योच्चार्णानन्तरमेव कर्म कियते स कर्ण-मन्त्रः । यथा — याज्या पुरोऽजुवाक्यादिकम् । श्रथवा — यं मन्त्रं पूर्वमुच्चार्यः मन्त्रान्ते कर्म कियते स करणमन्त्रः ।

२—क्रियमाणानु वादिमन्त्रः—कर्मानुष्ठानसमकालमेव यो मन्त्रः पत्यते स क्रियमाणानुवादी मन्त्रः । यथा — "युवा सुवासा" (ऋग्वेद ३१११३ ) इत्यादिः । अथवा क्रियाकरणकाल एव यो मन्त्रः पत्यते स क्रियमाणानुवादी मन्त्रः ।

३—श्रनुप्रन्त्रस्यान्त्रः कर्मसमनन्तरं यो मन्त्रः पत्थते सोऽनुमन्त्रसं-मन्त्रः । यथा—''एको मम एका तस्य योऽस्मान् द्वेष्ठि'' (श• त्रा० १।४।४।७) इत्यादिः । श्रयं हि मन्त्रो यजमानेन द्रव्यत्यागात्मके यागे कृते समनन्तरमेव नोन पत्थते ।

४ — जपमन्त्रः — एतदिति यो नाम "मयीदिमिति यजमाना जपित" (३१४।१८) इत्यादिना विद्वितः सिजप्तयोपकारकस्पः जपमन्त्रः । अथवा अरहार्यः कर्मकाले पठनीयो मन्त्रः जपमन्त्रः । पूर्वोक्तानां त्रयाणामनुष्ठियार्थस्मार क-त्वस्पं दर्धं प्रयोजनम् । जपमन्त्राणां तु अदृष्टमात्रं प्रयोजनमिति याज्ञिकानां मीम । स-

कुण्ड-मण्डप की आवश्यकता होती है। कुण्ड-मण्डप बनाने के पूर्व मण्डपार्थ भूमि का परीक्षण तथा दिक्साधन सर्वत्र परमावश्यक है। दिक्साधन किये वगैर कुण्डमण्डप शुद्ध और शुभ्रपद नहीं होता है। ऐसी स्थिति में भी शास्त्रज्ञों ने गङ्का आदि पवित्र नदी के ×तीर में तथा पर्वतादि में दिक्साधन को अनावश्यक कहा है—

स्थिण्डिले पर्वताप्रे च नदीकूले गृहेऽपि च। न प्राचीसाधनं कुर्यात् मण्डपादिषु कर्मसु।। (दानकल्पळता)

'स्थण्डिल में , पर्वतीय-भूमि में , नदी के किनारे और घर में दिक्-साधनादि मण्डपोपयोगि किया नहीं करनी चाहिये।'

यज्ञादि के अन्त में गादान करना श्रावश्यक है 'गां द्यात् यज्ञ-वास्त्वन्ते ब्राह्मणे वाससी तथा।' (कात्यायनः)

'यज्ञ और वास्तु आदि के अन्त में ब्राह्मण को गौ तथा वस्त्रादि अवश्य देना चाहिये।'

यज्ञ-पात्र निर्माण-कत्ती कीन त्याज्य है ?

यज्ञादि में यज्ञपात्रों की आवश्यकता पड़ती है। यज्ञ-पात्रों के वगैर यज्ञ कार्य सम्पादन नहीं हो संकता। जिन पात्रों का यज्ञ जैसे महत्त्वपूर्ण पवित्र कर्म में सदुपयोग होता है उन यज्ञपात्रों का निर्माण कर्ता शास्त्र के कथनानुकूळ हो होना चाहिये। देखिये, इस विषय में मविष्य-पुराण क्या कहता है-

मृतभार्यो ह्यभार्यश्च अपुत्रो मृतपुत्रकः। शूद्रसंस्कारकश्चैव कृपणो गणयाजकः।।

× "भावकृष्णचतुर्दश्यां यावदाक्रमते जलम् ।
तावद्गर्भ विजानीयावशदन्यत्तीरमुच्यते ॥" (वर्षिक्रयाकोमुदी)
तथा च ब्रह्माण्डे—'सार्द्धहस्तशतं यावत् गर्भतस्तौरमुच्यते ।'
तीराद्रःयूतिमात्रं तु परितः क्षेत्रमुच्यते ।' (ब्रह्माण्डपुराण)
'एक्रयोजनविस्तीर्णा क्षेत्रसीमातटह्वयात् ।' (ब्र० ६०)

प्रायश्चित्तगृहीतश्च राजयाजकपैशुनो ।
शूद्रगेहनिवासी च शूद्रप्रेरक एव च ॥
स्वल्पकण्ठो वामनश्च वृपलीपतिरेव च ।
बन्धुद्रेषी गुरुद्रेषी भार्याद्रेषी तथैव च ॥
होनाङ्गश्चैव वृद्धाङ्गो भग्नदन्तश्च दाम्भिकः ।
प्रतिप्राही च कुनखः पारदारिक एव च ॥
हिवन्नीकुण्ठिकुलोद्भृता निद्रालुर्व्यसनार्थकः ।
अदोक्षितः कदर्यश्च चण्डरोगी गरुद्वणः ।
महात्रणी च उदरो यज्ञपात्रं न कारयेत् ॥

'जिसकी स्त्री मर गई हो, जिसका विवाह न हुआ हो, जिसको पुत्र न हुआ हो, जिसका पुत्र मर गया हो, जो श्रुद्रों को विवाहादि संस्कार कराता हो, क्रमण, नीचां को यज्ञ कराने वाला, प्रायश्वित्त में ग्रहोत, राजा को यज्ञ कराने वाला, पिशुन (निन्दक) श्रुद्ध के घर में निवास करने वाला, श्रुद्धों को ज्ञान देने वाला, लघु कण्ट वाला, वाना, श्रुद्धा से सम्बन्ध रखने वाला, वन्धुओं से द्वेष रखने वाला, ग्रुह से द्वेष रखने वाला, अपनी स्त्री से द्वेष रखने वाला, किसी अङ्ग से हीन या जिसका कोई अङ्ग बढ़ गया हो, जिसके दांत टूट गये हों, पाखण्डी, असत्-प्रतिग्रह लेने वाला, खराव नाख्नों वाला, परस्त्री-गमन करने वाला, सफेद बुछ वाला, कुछी-कुल में उत्पन्न, अधिक सोने वाला, ज्यसनी, जिसने दीक्षा न लिया हो, जन-समाज में निन्दित, भयङ्कर रोग वाला, जिसके शरीर में कोई वाव गलता हो, बड़े फोड़े वाला तथा बड़े पेट वाला पुरुष इन लक्षणों से युक्त पुरुष से यज्ञपात्रों को निर्माण नहीं कराना चाहिये।

# यश-पात्रों का ग्रुद्धि प्रकार

यज्ञादि में उपयुक्त होनेवाले यज्ञपात्रों की शुद्धि दाहिने हाथ से पवित्र कुशा द्वारा जल के प्रश्नालन-मात्र से ही होती है। भगवान् मनु कहते हैं—— मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि।

चैमसानां प्रैहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥ चैरूणां 'सुक्-सुवाणां च गुद्धिरूण्णेन वारिणा । रमय शूर्प-शंकटानां च मुसलोल्रखं लस्य च ।। ( ५। ११६-११७ )

 चमत्यस्मिन्नसौ चमसः । पद्धाशादिकाष्ठनिर्मितो यश्चियपात्रविशेषः । तथा च कर्कः-

'स च चमसश्चतुरसा द्वादशाङ्कतदीर्घश्चतुरङ्गुलखातः सवृन्तश्च अवति ।' इति । २- गृह्यतेऽस्मिन्निति व्युत्पस्या सोमाधारभूतं पात्रं प्रहशब्देनासिधीयते ।

'चर्के देवानामन्न-३ - चरति होमादिकमस्नादसी चरः-श्रोदनविशेषः। मोदनो हि चरः' ( श॰ वा॰ ४।४।२। १ ) श्रथना—परिपक्वास्तण्डुलाखरुः शब्दे-नाच्यते । तत्स्बह्रपमुक्तं सारसङ्ग्हे-

"श्रनिर्गतोष्मा सुस्विन्नो ह्यद्रश्रोऽकठिनश्रदः। न चातिशिथितः पाच्या न च वीतरसा भवेत् ॥"

. ४ — पत्ताशादिकाष्ठनिर्मिता बाहुप्रमाणाः पाणिप्रमाणमुखास्त्वक्प्रदेशे विज्ञवत्यो हं यमुख बद्शेक प्रणाखिका मूलदण्डा भवन्ति । ताश्च तिस्रः — जुहुः, उपभृत्, ध्रुवा च ।

बिद्रकाष्ठिनिर्मितोऽरिनप्रमागोऽङ्गष्ठपर्वप्रमागावृत्तमुखो भवति ।

चोक्तं महर्षिया कात्यायनेन—'खादिरः स्वः' (१।३।३३)

'अरत्निमात्रः सुवोऽङ्ग्ष्यपर्वदृत्तपुष्करः।' ( १।३।३६ )

तया च-श्रङ्गुष्ठपर्वदृतः स्यात् रितमात्रः खुवो भवेत् । पुष्कराई भवेत् खातं पिण्डकाई ( मुष्टयई म् ) सुवस्तथा ॥ ६ — खिंदरकाष्ट्रनिमितः खड्गाकारोऽरिनमात्रो भवति । तथा चौक्तम् —

शम्या प्रादेशमात्रा स्यात् खादिरः स्पयः प्रकीतितः । खड्गाकारो रतिनमात्री वज्रह्यो सखे स्मृतः ॥

७-- शूर्प्यते धान्यादिकमनेनेति शूर्पः । श्रोतप्रयोगे शूर्पस्योगो भवति ।

अनडुद्रहनकाष्ट्रनिर्मितं शक्टशब्देनोच्यते ।

६— धान्यकण्डनसमर्थं सुसर्लं काष्ठपात्रम् । श्रथवा-मुहुर्मुहुः सरति त्रीह्यादिषु इति मुसलम् । उन्नतं च यास्केन — मुसलं मुहुः सरं भवति ।' ( ६।२।३६ )

'यज्ञ-कर्म में यज्ञ-पात्रों की ग्रुद्धि हस्त-द्वारा मार्जन करने से और चमस तथा ग्रह नाम के पात्रों की ग्रुद्धि जल के घोने से होती है। चह तथा तुक् और खुना आदि यज्ञ-पात्रों की ग्रुद्धि गरम जल से और स्मय, ग्रूपं, शक्ट, मुसल र ओखली की ग्रुद्धि जल के प्रशालन से होती है।'

याज्ञवल्क्य स्मृति में भी कहा है-

'मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यजकमीण ।' (आचाराध्याय, १८५) 'यज्ञ-कर्म में यज्ञपात्रों की गुद्धि दाहिने हाथ से कुशा द्वारा मार्जन मात्र करने से ही हो जाती है।'

यज्ञीय काष्ठ

पलाशाऽद्यत्थन्यमोघ प्रश्नवै सङ्कतोद्भवाः ।

वैतसौदुम्बरो बिल्बश्चन्दनः सरहस्तथा।

शालश्च देवदारुश्च खिद्रश्चेति याज्ञिकाः ॥ ( ब्रह्मपुराण )
'पलाश (दाल ) की, पीपल की, वट की, पाकर की, वैकङ्कत की, वेंत की,
गूलर की, वेल की, चन्दन की, शाल की, देवदाह और कन्या इनकी लकड़ी
याज्ञिक कही जाती हैं।'

यज्ञ के आयुध

स्पय कपालादोनि यज्ञस्य साधनानि यज्ञायुवानीत्युच्यते । 'स्म्य, कपाल इत्यादि यज्ञ के साधनां को यज्ञायुध कहते हैं ।'

क्ष्यञ्च संरत्तक देवता

यज्ञादि में गणेश, दुर्गा, वायु, आकाश, अवित्रनी-कुमार, वास्तोष्पति और क्षेत्रपाल यह यज्ञ के संरक्षक देवता कहे जाते हैं।

तत् लाति गृह्णाति इति उल्बन्धा उल्बन्धा व्हर्ष यास्केन तु अन्ययः निक्किर्दर्शिता। यथा ( ६।२।२ । )—

'उल्बलमुहकरं वोकरं वाध्वेखं वाह मे कुर्वित्यववीत दुल्ब तनमवत्। उहकरं

चैतदुलुखबिम्त्याचमतेऽ।राभ्रेणेति च ब्राह्मणम् ।

ग्रहहोमपूजायां गणपति-दुर्गा-नायु-आकाश-अदिव-नास्तोष्पति-क्षेत्रपाछाः
 कतुसंरक्षक देवता उच्यन्ते । (संस्काररज्ञमाजाः)

# यज्ञ में सभी को माग लेना चाहिये

यज्ञ एक अत्यन्त पवित्र कर्म है। इस पवित्र-कर्म में प्रायः समस्त देवगण का निवास रहता है, साथ ही उसमें अनेक विरक्त साधु, महात्मा, तपस्वी, विद्वान, उपदेशक आदि दूर-दूर से सम्मिलित होकर यज्ञ की शोभा-वृद्धि में और भी सहायक होते हैं। ऐसे महनीय कार्य में सभी को द्रव्य, अन्न, वस्त्र तथा अन्यान्य साधनों द्वारा सहायता करनी चाहिये। यदि यह न हो सके तो कम से कम यज्ञ-भूमि में उपस्थित होकर यज्ञ भगवान् के दर्शन, प्रदक्षिणा, यज्ञ में आये हुए साधु-महात्माओं का दर्शन और उपदेश अवण तथा यज्ञ-प्रसाद आदि अनेक दुर्लम महत्त्वपूर्ण वस्तुओं की प्राप्ति द्वारा अपने जन्म को सफलीभूत दनाना चाहिये। यज्ञ भगवान् के दर्शन के विषय में तो यहाँ तक शास्त्रज्ञों ने लिखा है कि-'यज्ञ में भगवान् के दर्शनार्थ तो अनाहृत (वगैर बुलाये) होकर भी जाना चाहिए—'ध्यनाहृताऽध्वरं व्रजेत्।'

जो मनुष्य शास्त्राज्ञा का उल्लब्धन करते हुए यज्ञ के विरोधी हैं अर्थात् यज्ञ के सहयोगी नहीं हैं वह तिरस्कार के योग्य हैं और जो मनसा, कर्मणा, वाचा यज्ञ के सहयोगी हैं वह स्वीकृति के योग्य हैं। कृष्ण यजुर्वेद के ऐकपदिक काण्ड में भी कहा है—

'या वै प्रजा यज्ञे अनन्वाभक्ताः परामृता वै ताः, एवमेवैतद्या इमाः प्रजा अपरामृतास्ता यज्ञमुख आभजति ।' ( ३।१।२० )

'जो प्रजा यज्ञ में' सहयोगी नहीं है वह पराभूत है अर्थात् तिरस्कृत के योग्य है और जो प्रजा-यज्ञ में सहयोगी है वह अपराभूत है अर्थात् स्वीकृतिं के योग्य है।'

### पाँच प्रकार के यहा का निषेध

आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध प्रन्थ 'भाव प्रकाश' की टीका में निम्नलिखित पाँच प्रकार के यहाँ के करने का स्पष्ट निषेध किया है। यथा—

वििष्ठीनं यथाशास्त्रावबोधितविपर्ययम् । अन्नदानविहीनं च स्वरतो वर्णतस्तथा ॥ मन्त्रहीनं यथाशास्त्रं दक्षिणाहीनमध्वरम् ।

आस्तिक्यबुद्धिशुन्यं तं तामसं कथयन्ति वै ॥ अयं पञ्चविघो यज्ञः त्याज्यः श्रेयोऽर्थिभिः सदा ।

'शास्त्रोक्त सिद्धान्तों के विपरीत विधिहीन यज्ञ, अन्नदानादि से रहित यज्ञ, मन्त्रों के स्वर तथा वर्णों के यथार्थ उच्चारण रहित यज्ञ, सर्वथा मन्त्रों से हीन यज्ञ, दक्षिणाहीन यज्ञ और आस्तिक बुद्धि-हीन यज्ञ को \* 'तामस' कहते हैं। अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्यां को चाहिये कि वह उपर्युक्त पाँच प्रकार के यज्ञों का सर्वदा त्याग करें।'

यज्ञादि में मएडप श्रीर मएडप का समस्त सामान श्राचार्य का

यज्ञभाण्डानि सर्वाणि मण्डपोपस्करादिकम् । यच्चान्यदपि तद् +गेहे तदाचार्याय दापयेत् ॥

( मत्स्यपुराण, २९१।३० )

'यज्ञ में चढ़े हुए या पूजन में लगे हुए वर्त्तन आदि, मण्डप को सजाने की सामग्री, लकड़ी, वाँस वगैरह तथा मण्डप के समस्त उपस्करादि सङ्कल्प करके आचार्य को देना चाहिए।'

अन्यत्र भी लिखा है---

'कुम्भोपकरणं सर्वमाचार्याय निवेदयेत्।' ( सनत्कुमार संहिता ) 'कुम्मादि समस्त मण्डप-सामग्री आचार्यं को देनी चाहिये।'

यज्ञादि के अन्त में भगवत्प्रार्थना आवश्यक है यज्ञ का स्वरूप बहुत ही विशाल है। यह निर्विवाद है कि वड़े कार्यों में

, #विधिहीनमस्रष्टाणं मन्त्रहीनमदिष्याम् । श्रद्धाविरहितं कर्म तामसं परिचक्षते ॥ ( गीता १७११ ह ) श्रीर मी कहा है— 'तामसे त्वययाशास्त्रादुष्ठानान्न फलं मनाक् ।' +यहाँ पर गेहपदेन 'मण्डप' समस्तना चाहिये ।

मनुष्य से किसी न किसी प्रकार छटि हो ही जाती है। फिर यह में तो यजमान को अनेक कार्यों का आधिक्य रहता है, ऐसी स्थिति में मनुष्य से क्षण-क्षण में छटि हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कुछ तो मनुष्य से ह्यानपूर्वक छटि हो जाती हैं और कुछ अज्ञानपूर्वक ही हो जाती हैं जिनका स्वयं भी उसे पता नहीं चछता। अतः कर्म में छटि-जन्य यजमान पाप का भागी न बनें एतद्थे यहादि के अन्त में कर्म की न्यूनता की पूर्ति के छिये यजमान को भगवान से इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

ॐप्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् । स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञिकयादिषु । न्युनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

'श्रुति में कहा है—यज्ञ में कर्म करने वालों का जो कर्म यदि प्रमादवज्ञ छूट जाय तो उसकी पूर्णता मगवान् विष्णु के स्मरण-मात्र से ही हो जाती है।'

'जिन भगवान् के स्मरण और नामोचारण से ही तप, यज्ञ आदि कमों की न्यूनता की तत्थण पूर्ति हो जाती है, उन भगवान् अच्युत को मैं भक्ति-पूर्वक प्रणाम करता हूँ।'

रचिता यज्ञ-मीमांसा वेणीरामेण शर्मणा। समापिता, स भगवान् तुष्यत्वेतेन कर्मणा।।

\* श्रीयज्ञपुरुषभगवत्स्मरणात्परिपूर्णतास्तु \*

**\* इति** 

# परिशिष्ट भाग

### अथज्ञ-सामग्री

	CO 141 /11-12/1	
॥) रोडी	दुग्ध १ पाव (प्रतिदिन)	१) इलायची बड़ी
॥) मौछी	)॥ दिषि ,,	1) इलायची छोटी
n) धूप ( अगर )	॥) सहत	- १) जावित्री
१) घूपबत्ती	<b>चृत</b>	१) जायफळ
१) केसर	चीनी	५) पञ्चमेवा
१) कपूर	गोवर	कन्तूरी
1) सिन्दूर	गोसूत्र	कुशा
चन्दनका मुद्दा २	यज्ञोववीत ४ कोड़ी	दूर्वा, गंगाजळ, तुळसी
होरसा १	॥) भवीर ( गुलाल )	अग्निहोत्र भस
॥) बतासा	॥) बुका ( अभ्रक )	पीसी इलदी १ सेर
पेड़ा १ सेर (प्रतिदिन	कसोरा २००	में इदीकी बुकनी १ सेर
नवीन चाहिये)	पत्तल २००	पीछी सरसों १ पाव.
॥) ऋतुफ्छ "	पुरवा २००	नारियक १०
पान ५० ,,	१) छवंग	नारियक गोका १०

\* यज्ञ-सामग्री का उल्लेख शास्त्र-पद्धित के अनुसार किया गया है आतः शास्त्राजुकूल सामग्री का संग्रह सर्वथा उचित है, किन्तु जो यज्ञकर्ता ऐसा करने में बस्तुतः
असमर्थ हों उन्हें चाहिये कि वह अपनी शक्ति के अनुसार हो यज्ञ-सामग्री संग्रहः
कर यज्ञादि कमें में यज्ञ-पुरुष भगवान् को भक्ति-माव से परिपूर्ण होकर निवेदन करें।
ऐसा करनेवालों को भी उतनाही फल होगा जितना कि अत्यधिक यज्ञ-सामग्री निवेदन
करने वालों को होता है। वास्तविक में 'भाविमच्छनित देवताः' भगवान् तो केवल
भाव के ही भूखे हैं न कि ब्रक्यादि के। स्वयं भगवान् ने भी गीता में—

"पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छिति । तद्दं भक्त्युपहितमञ्जामि प्रयतात्मनः ॥''

इत्यादि बाक् यों द्वारा भक्ति-भाव को ही मुख्य श्रीर श्रपनी सर्व-प्रिय वस्तु कहा है।

पेश्चरत्न ( सुवर्ण, हीरा, नीलम, पोखराज और मोती )
सेवैंषिधि ( कुट, जशमासी, ऑबाहलदी श्रीर दारूहलदी, सुरा;
शिलाजीत, चन्दन का चूर, वच, चम्पा श्रीर नागर मोथा )
संप्तमृत्तिका ( हाथी के स्थान की, घोड़े के स्थान की, विल ( डीमक )
स्थान की, सङ्गम ( जहाँ पर दो निद्यों का मिलन हुआ हो ) स्थान की,
तालाव की, गोशाला और चतुल्पथ ( राजद्वार अथवा कचहरी ) की सृत्तिका )
स्प्तिधान्य ( यव, गेहूँ, धान, तिल, ककुनी, सावाँ और चना )
पंश्चरङ्ग १ — सफेद रङ्ग [ चावल अथवा यव का चूर्ण ]
२ — लाल रङ्ग [ कुसुंभ, सिन्दूर अथवा गेरू ]
३ — पीला रङ्ग [ विताल, अथवा हलदी ]
५ — काला रङ्ग [ यव का जला हुआ चूर्ण ]
५ — नीला रङ्ग [ पीला और काला रङ्ग मिला हुआ ]

नैवग्रह समिधा ( मदार की १०८, पलाश की १०८, खैर की १०८,

१— 'कनकं कुलिशं नीलं पद्मरागं च मौकिसम्।'' (आदित्यपुराण)
२— "कुन्ठं मांसी हरिहे हे मुरा-शैलेयचन्दनम्।
वचा-चम्यक-मुस्तं च सर्वोपच्यो दश स्मृताः॥'' (झन्दोगपरिशिष्ट)
३— "गजाऽश्वरच्या-चन्मीक-सन्नमाद्हद्गोकुलात्।
मृदमानीय कुम्मेषु प्रक्षिपेत् चस्वरादिष्॥'' (भविष्यपुराण)
४— 'यव-गोध्म-धान्यानि तिलाः कङ्कस्तथैन च।
स्यामकाश्वणकःश्चेत्र सप्तधान्यमुदाहतम्॥'' (भविष्यपुराण)
५— "रज्ञासि पञ्चवर्णीन मण्डलार्थं हि कारयेत्।
शाब्रि-तण्डलचूर्णेन शुक्लं वा यवसम्भवम्॥
रकं कुसुम्म-सिन्द्र-गौरिकादि समुद्भवम्।
हरितालोद्भवं पीतं रजनीसम्भवं तथा॥
कृष्णं दग्वयवैनींशं पीतकृष्णिविभिन्निन्नम्॥' (पञ्चरात्र)

4— अर्कः पलाशः स्वदिरस्त्वपामार्गोऽथ पिप्पलः।
चुम्बरः शमी द्वी कुशाश्व समिधस्त्वमाः॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

```
अपामार्ग की १०८, पीपल की १०८, गूलरकी १०८, शमीकी १०८ दुर्वा की
 १०८ और कुशा की १०८)
मृगचम १
                                   दियासकाई
कंबल १
                                   पीढा २
नारियल की जटा
                                    चौंकी २
फुकनी
                                   घररा
                                   घडील
सुतरी
गोयठा सुखा
                                   तांवेका तार २० हाथ
अथरी सृत्तिका
                                   शङ्क लोहे के ४
पंखा
                        ( चांदी, ताम्र अथवा पीतल का ) [ हरिहरयाग में
प्रधान कलश
                                    प्रधान कलश २ होंगे ]
प्रवेश कलश
चास्तु क्छश
                                          "
योगिनी कलश
क्षेत्रपाल कलश
ग्रह कलश
गङ्गासागर
श्रभिषेक पात्र
प्रणपात्र -
कटोरी
चहस्थाछी
                                          "
थाखी
```

एकैकस्याष्ट्रशतकमधार्विशति वा पुनः । होतव्या मधुसर्पिभ्यां दश्ना चैव समन्विताः ॥ प्रादेशमात्राः समिधः सरला अपसाशिनीः । समिधः कल्पयेत् प्राज्ञः सर्वकर्मसु सर्वदा ॥

(मत्स्यपुराया)

परांत	. 7	91
कड़छी	1	, 11
सड़सी	1	91
चिमटा		9)
<b>छायापात्र</b>	1	(कांसेका)
कटोरा	1	19
	क वरण-सामग्री (	ऋत्विजों के लिये )—
घोती		कंबलासन
हुपट्टा		कटोरी (मधुपर्कार्थ प्रत्येक ब्राह्मण के
अंगोछा		लिये दो दो )
यज्ञोपवीत	THE RESERVE OF THE PERSON NAMED IN	गोमुखी
पंचपात्र		रुद्राक्षमाला .
आचमनी		पुष्पमाञ्चा
तष्टा		बढ़ाजू
अर्घा		अँगूठी ( सुवर्ण )
कोटा		
गिलास		नान्दीश्राद्ध के लिए-
छाता		घोती ४
कुशासन		हुपद्वा .४
देवताओं को चढ़ाने के वस्त्र—		

प्रधान देवता के लिये श्रेष्ठ वस्त्र २	मण्डपार्थं वस्तुं—
घोती २१	थान कपड़ा सफेद ३
हुपद्दा २१	थान ,, छाछ . १
चुँदड़ी रेशमी १	थान , काळा १
लाक वस्त्र गज ८	थान , नीला १

<sup>\*</sup> जितने ऋतिवजों का नरण अमीष्ट हो उतनो हो घोती आदि सामान की योजना कर तेनी चाहिए Brawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

***************************************			
थान ,, हरा १	सिंहासन १ (चाँदी का)		
थान ,, पीछा १	छत्र १ "		
तस्वीर देवताओं की १६	चँवर १ ,,		
सीसा १६	=30		
सीसा बड़ा ४			
बढ़ी वर्षा १	सुवर्णशासा २ "		
<b>युँ</b> युद्	सुवर्ण जिह्वा २ ,,		
सुवर्ण खण्ड १०१	पञ्चपात्र २ ,,		
वास्तु प्रतिमा १ (सुवर्णकी)	तष्टा २ "		
यहाकाळी प्रतिमा १ ,	अर्घा २ ,,		
महालक्ष्मी प्रतिमा १ ,,	आचमनी २ "		
महासरस्वती प्रतिमा १ ,,	सुवर्णश्राहाका २		
योगिनी प्रतिमा १ ,,	सुवर्णजिह्वा २		
American market	अरिण-पूजन वस्त्र १		
a mana a Cara	अराण-पूजन पस्त्र र		
	पूर्णाहुति वस्त्र २		
ण्ड्र प्रतिमा १ ,, पार्वती प्रतिमा १ ,, नन्दी प्रतिमा १ ,,	जल-यात्रा के लिये वस्त्र और		
पार्वती प्रतिमा १ ,, ह	. कलश—		
	घोती ९		
विष्णु प्रतिमा १ , ) ग्रा	डुपष्टां ९		
लक्ष्मी प्रतिमा १ ,,	व कलश		
मण्डप वनाने का सामान—			
बाँस २० (१० हाथ के)	ं वट की लकड़ी २ (७ हाथ की)		
बाँस या बह्डी १२ ( ७ हाथ की )			
बास या बल्ली ४ (९ हाथ की)			
नाल या प्रश्ना व ( रहाय का	417		

'× जिस देवता के नाम से जो यह हो उसी देवता की प्रतिमा रखनी चाहिये। जैसे-शिव, विष्णु, गगापति, रामनाम, विश्वम्मर, ब्रह्मा ( हंस अथवा चतुर्मुख ) वर्ध, दुर्गा, लक्ष्मी शक्ति आदि नाम के यज्ञों में तत्तत् नाम की प्रतिमा रखनी चाहिये।

केले के स्तम्भ ३२ छप्पर चढाई मूँज की रस्सी इँटा पक्की २००० इँटा कची ३००

# हवनीय द्रव्य-

	हवनाय प्रव्य—		
विष्णु याग	महाविष्णु याग	श्रतिविष्णु याग	
मन	मन	मन	
तिक ११	तिक १२	तिक ४४	
चावल ५	चावल १०	चावळ २०	
्यव . ३	यव ६	यव १२	
चीनी . २	.चीनी ४	चीनी ६	
• वृत २	घृत ४	घृत ८	
पायस १	पायस २	पायस ४	
कमल गद्दा (२ सेर)	कमळ गहा ( ४ सेर )	कमळ गद्दा (८ सेर)	
चन्द्रनका चूरा ( ४ सेर )	चन्द्रन का चूरा (८ सेर)	चन्दन का चूरा (१६ सेर)	
गुगुळ (३ सेर)	गुग्गुळ (३ सेर)	गुगाुक (४ सेर)	
पञ्चमेवा (१ सेर)	पञ्चमेवा (८ सेर)	पञ्चमेवा (१० सेर)	
भोज पत्र (आधा सेर)	भोज पत्र (१ सेर)	भोज पत्र (१॥ सेर)	

लघुरुद्र याग	महारुद्र याग	श्रतिरुद्र याग	
<b>मन</b>	मन	मन	
ंतिल ११	तिल २२	विक ४४	
चावल पा	चावळ ११	चावल २२	
यव ३	यव ६	यव १२	
चीनी . २	चीनी ४	चीनी ६	
· मृत २	वृत ४	घृत ८	
·पायस <sub>्</sub>	पायस २	पायस ४	
कमल गहा (२ सेर)	कमल गद्दा (४ सेर)	कमक ग्रहा (८ सेर)	
चन्दनका चूरा (४ सेर)	चन्दनका चूरा ( ८ सेर )	चन्दन का चूरा (१६ सेर)	

```
गुग्गुळ (२ सेर) गुग्गुळ (४ सेर) गुग्गुळ (८ सेर)
पंचमेवा (५ सेर) पंचमेवा (१२ सेर) पंचमेवा (२० सेर)
भोज पन्न (आधा सेर) भोज पन्न (१ सेर) भोज पन्न (२ सेर)

× हवनार्थ लकड़ी—५० मन।
```

### शच्या सामग्री—

```
पलङ्ग
             ( नेवार का बुना हुआ ) । सोहाग पिटारी
  तकिया
                                      चौकी
  तोसक
                                     आसन-गळीचा
                                     चँवर
  चद्रा
           2
  चाँदनी २
                                     शीशा बड़ा १
  सुजनी
                                     घड़ी
/ दरी
                                     पानदान १
  रजाई
                                      श्रतरदान १
  मसहरी
                                      पीकदान १
  धोती
                                      पञ्चपात्र
  पीताम्बर १
                                      आचमनी १
  शिल्क
                                      श्रर्घा
  दुशाला
                                      तप्रा
                                      भोजन के समस्त वर्त्तन
  द्धपद्या
  पहनने के वस्त्र (कोट, कमीज वगैरह)
                                      चूल्हा
                                      कालटेन १
  साफा (पगड़ी)
  अँगोला
                                      पंखा
                                      अन्न ( सब प्रकार के )
ं छाता
  जूता (स्वदेशी) १
                                      आभूपण
  खड़ाऊँ
                                      पुस्तक ( वेद, गीता, पुराण भादि )
```

× ''शमी-पत्ताश-न्यप्रोध-स्थ-वैकड्दतोद्धवाः । अश्वत्योद्धम्बरी बिक्वथन्दनः सरतस्तथा॥ शास्त्रथ देवदास्य खदिरश्चेति योशिकाः॥'' ( ब्रह्मपुरायः )

# शरीर-शुद्धवर्थं सर्वप्रायश्चित्त गोदान-

गोदान ३६०,१८०,९०,४५,	₹•,	प्रधान दक्षिणा	प्रतिदिन
पूर्वाङ्क गोदान	۲)	आचार्य दक्षिणा	31
उत्तराङ्ग गोदान	2)	वह्या दक्षिणा	70
विष्णु श्राद्ध	(8)	द्वारपाल दक्षिणा	71
सभ्य पूजन	ره	अर्ग्यि-पूजन दक्षिणा	
अनुवादक	3)	तज्जन्य गोदान दक्षिणा	
निवन्व पूजन (पुस्तक पूजन)	3)	पूर्णाहुति दक्षिणा	[ यथाशक्ति ]
विष्णु पूजन	3)	भूयसी दक्षिणा	• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •
त्रह्म-होतृ-वरण	18)	गोनिष्क्रय द्रव्य दक्षिणा	,,
		मण्डप निष्क्रय दक्षिणा	15
अङ्ग दक्षिणा	TPUT	भूमिनिष्कय दक्षिणा	20

# इति \*



### # श्रीहरि: #

# वेदाचार्य पं॰ श्रीवेणीराम शर्मा गौड़ की

अन्य पुस्तेकें-

(१) पारकरश्रुव्य ( ।वश्रुत	वाहत )		311
(२) वेद-विज्ञान-मीमांसा (स्व	तन्त्र ग्रन्थ	)	
(३) विवाहपद्धति ( हिन्दीभाषा	Sent Land Control of the Park		11)
(४) पिङ्गलछन्दसूत्र (प्रेमानुभू	THE RESERVE OF THE PARTY OF THE	हा सहित )	=
(५) यज्ञ-मीमांसा ( प्रथम-भार	τ)		=
(६) यज्ञ-मीमांसा (द्वितीय-भा			यन्त्रस्थ
	3		

# महामहोपाध्याय पं॰ श्रीविद्याधरजी गौड़ के रचित ग्रन्थ—

- (१) कात्यायमश्रीतमृत्र
- (२) कात्यायनशुल्वस्त्र
- (३) देवयाज्ञिकपद्धति
- (४) श्रादसार
- (५) स्मार्त्तप्रमु
- (६) शिलान्यासपद्धति
- (७) वास्तुशान्तिपद्धति
- (८) विवाहपद्धति
- (९) उपन्यनपद्धति
- (१०) कात्यायन-श्रीतसृत्र-भूमिका

पुस्तक प्राप्ति-स्थान-मास्टर् खेलाड़ीलाल ऐएड सन्स, संस्कृत-बुकडिपो, कचौड़ीगळी, काशी।



